

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 78 — दन्तवक्र और रोमहर्षण

5 October 2026



एक अभिमानी योद्धा कृष्ण की गदा के सामने गिरता है, और नैमिषारण्य में बलराम के हाथ का एक कुश-तृण ऋषियों को सिखा जाता है कि विनय के बिना विद्वत्ता केवल रंगमंच पर निभाया गया अभिनय है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस अठहत्तरवें अध्याय में शुकदेवजी पहले कृष्ण के शत्रुओं — दन्तवक्र और उसके भाई विदूरथ — की कथा पूर्ण करते हैं, और फिर तीर्थयात्रा पर निकले बलराम के साथ नैमिषारण्य के ऋषियों के महायज्ञ तक पहुँचते हैं, जहाँ वक्ता के आसन पर बैठा अभिमान समस्त संसार के लिए शिक्षा बन जाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 78 (अष्टसप्ततितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: दन्तवक्र, विदूरथ और रोमहर्षण का वध
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका का रणक्षेत्र और नगर; सरस्वती-तट के तीर्थ; नैमिषारण्य वन
- केंद्रीय विषय: दन्तवक्र और विदूरथ का उद्धार; बलराम की तीर्थयात्रा; रोमहर्षण सूत का पतन और ऋषियों द्वारा बताया गया प्रायश्चित्त
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 1-40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

सतहत्तरवें अध्याय में शाल्व ने वसुदेव के बन्दी होने की माया रचकर कृष्ण को छलना चाहा, किन्तु प्रभु ने उस माया को पहचानकर सौभ विमान को चूर कर दिया और सुदर्शन चक्र से शाल्व का सिर काट दिया। अध्याय के अन्त में दन्तवक्र अपने मारे गए मित्रों का बदला लेने क्रोध में निकल पड़ा।

दन्तवक्र अकेला रणभूमि में आता है

शुकदेवजी ने कहा: करुष देश का मन्दबुद्धि राजा दन्तवक्र शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक का घनिष्ठ मित्र था, जो सब कृष्ण के हाथों परलोक जा चुके थे। मृत मित्रों के प्रति मित्रता का ऋण चुकाने की इच्छा से वह प्रभु से लड़ने बिल्कुल अकेला आया — न सेना, न रथ, हाथ में केवल एक गदा। किन्तु उसका बल इतना विशाल था कि पैदल चलते उसके पगों से पृथ्वी काँप उठी।

उसे इस प्रकार आता देख कृष्ण ने तुरन्त अपनी गदा उठाई, रथ से कूद पड़े और दन्तवक्र को वैसे ही रोक लिया जैसे तट उमड़ते समुद्र को रोकता है।

तं तथायान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ।

अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

taṁ tathāyāntam ālokyā gadām ādāya satvaraḥ avaplutya rathāt kṛṣṇaḥ sindhum veleva pratyadhāt

अर्थ: उसे उस रीति से आते देखकर कृष्ण शीघ्र गदा लेकर रथ से नीचे उतरे और उसके मार्ग में वैसे खड़े हो गए जैसे वेला सागर को थाम लेती है। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 3)



दन्तवक्र केवल गदा लिए अकेला रणभूमि में आता है; कृष्ण रथ से कूदकर उसके मार्ग में वैसे खड़े हो जाते हैं जैसे तट समुद्र को रोकता है (श्लोक 3)।

गदा उठाकर मदोन्मत्त राजा ने व्यंग्य भरे हर्ष से मुकुन्द से कहा: ‘सौभाग्य है, कृष्ण, कि आज तू मेरी दृष्टि के सामने आ गया! तू मेरा ममेरा भाई है, फिर भी तूने मेरे मित्रों को मारा और अब मुझे भी मारना चाहता है। इसलिए, मूर्ख, मैं इस वज्र-सी कठोर गदा से तुझे नष्ट कर दूँगा। बन्धु का रूप धरे शत्रु को — शरीर में बसे रोग की भाँति — मारकर ही मैं अपने मित्रों का ऋण चुका सकता हूँ।’

जैसे महावत अंकुश से हाथी को कोंचता है, वैसे ही इन कटु वचनों से प्रभु को बाँधकर दन्तवक्र ने कृष्ण के सिर पर गदा दे मारी और सिंह की तरह गरजा। किन्तु यदुश्रेष्ठ एक पग भी न डिगे। अपनी भारी गदा कौमोदकी से कृष्ण ने उसकी छाती पर प्रहार किया; हृदय विदीर्ण हो जाने पर दन्तवक्र प्राणहीन होकर धरती पर गिर पड़ा, उसके केश, भुजाएँ और पैर फैल गए।

तब, हे राजन्, ठीक वैसे ही जैसे शिशुपाल के वध के समय हुआ था, दन्तवक्र से एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकली और सबके देखते-देखते कृष्ण में समा गई।

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।

पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥

tataḥ sūkṣmataraṁ jyotiḥ kṛṣṇam āviśad adbhutam paśyatāṁ sarva-bhūtānāṁ yathā caidya-
vadhe nṛpa

अर्थ: हे नृप, तदनन्तर एक सूक्ष्मतर अद्भुत तेज समस्त प्राणियों के सामने कृष्ण में प्रविष्ट हो गया, जैसा चेदिराज के वध पर हुआ था। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 10)

विदूरथ का पतन और प्रभु को द्वारका-वापसी

दन्तवक्र का भाई विदूरथ भ्रातृशोक में डूबा, ढाल-तलवार लिए हाँफता हुआ कृष्ण को मारने रणभूमि में आया। उसके झपटते ही प्रभु ने क्षुरधार सुदर्शन चक्र से उसका मुकुट-कुण्डल सहित सिर काट लिया।

इस प्रकार सौभ, शाल्व, दन्तवक्र और उसके छोटे भाई का — जिन्हें और कोई न जीत सकता था — वध करके कृष्ण देवताओं और मनुष्यों द्वारा स्तुत हुए। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सराएँ, पितर, यक्ष, किन्नर और चारण उनकी विजय का गान करते हुए उन पर पुष्प बरसाने लगे, और श्रेष्ठ वृष्णियों से घिरे प्रभु ने अपनी सजी हुई नगरी में प्रवेश किया।



शाल्व, दन्तवक्र और विदूरथ का उद्धार कर कृष्ण अपनी सजी नगरी में प्रवेश करते हैं, और मुनि, गन्धर्व तथा अप्सराएँ पुष्प बरसाते हुए उनकी विजय का गान करते हैं।

यहाँ शुकदेवजी प्रभु के हर युद्ध के नीचे छिपे एक सत्य पर ठहरते हैं: योगेश्वर कृष्ण पशु-दृष्टि वालों को कभी-कभी पराजित दिख सकते हैं, किन्तु वे सदा विजयी ही हैं।

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः ।

ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥

evam yogeśvaraḥ kṛṣṇo bhagavān jagad-īśvaraḥ īyate paśu-dṛṣṭīnām nirjito jayatīti saḥ

अर्थ: इस रीति से योग के स्वामी और जगत् के नियन्ता भगवान् कृष्ण, जिनकी दृष्टि पशुओं जैसी है उन्हें कभी हारे हुए प्रतीत होते हैं; किन्तु जीतते सदा वे ही हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 16)

बलराम को तीर्थयात्रा

अब कथा बलराम की ओर मुड़ती है। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध की तैयारी सुनकर वे तटस्थ रहना चाहते थे, इसलिए तीर्थस्नान के बहाने द्वारका से निकल पड़े। प्रभास में उन्होंने समुद्र-स्नान कर देवताओं, ऋषियों और पितरों को जल-तर्पण से तथा मनुष्यों को भोजन से तृप्त किया। फिर ब्राह्मणों के साथ सरस्वती के प्रवाह के विपरीत चलते हुए वे पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती के स्थल पर गए। यमुना और गंगा के तीर्थों से होते हुए वे अन्ततः नैमिषारण्य पहुँचे, जहाँ ऋषि दीर्घकालीन सत्र कर रहे थे।



आने वाले युद्ध में तटस्थ रहने की इच्छा से बलराम द्वारका छोड़ तीर्थयात्रा पर निकलते हैं, प्रभास में स्नान कर सरस्वती-तट से नैमिषारण्य की ओर बढ़ते हैं।

वक्ता के आसन पर रोमहर्षण

आगन्तुक को पहचानकर उस दीर्घ सत्र के ऋषि उठ खड़े हुए, उन्होंने बलराम का स्वागत किया, प्रणाम किया और अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार उनकी पूजा की। जब वे अपने साथियों सहित आसन पर बैठ गए, तब बलराम ने देखा कि महर्षि व्यास के शिष्य रोमहर्षण वक्ता के ऊँचे आसन पर बैठे हैं।

जन्म से सूत होकर भी वे ब्राह्मणों से ऊपर बैठे थे, और प्रभु के आने पर न उठे थे, न हाथ जोड़कर झुके थे। यह देखकर माधव को क्रोध आया।

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।

अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥

apratyutthāyinaṁ sūtam akṛta-prahvaṇāñjalim adhyāsīnaṁ ca tān viprāṁś cukopodvīkṣya mādhavaḥ

अर्थ: उस सूत को, जो उठा नहीं था, जिसने अंजलि बाँधकर नमन नहीं किया था और जो उन ब्राह्मणों से ऊपर आसीन था, देखकर माधव कुपित हो गए। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 23)



ऋषि बलराम के स्वागत में उठते हैं, किन्तु रोमहर्षण सूत ऊँचे आसन पर बैठे रहते हैं, न उठते हैं न हाथ जोड़ते हैं — और माधव का क्रोध जाग उठता है (श्लोक 23)।

बलराम ने ब्राह्मणों से कहा: ‘प्रतिलोम जन्म वाला यह व्यक्ति इन ब्राह्मणों से और धर्म की रक्षा करने वाले हम लोगों से ऊपर बैठा है, इसलिए यह मूर्ख वध के योग्य है। भगवान् व्यास का शिष्य बनकर इसने इतिहास, पुराण और सभी धर्मशास्त्र पढ़े — किन्तु जो अजितेन्द्रिय और अविनीत है, जो व्यर्थ ही स्वयं को पण्डित मानता है और जिसने अपने मन को नहीं जीता, उसकी विद्या वैसे ही निष्फल है जैसे नट के बोले हुए संवाद उसे वह नहीं बना देते जिसका वह अभिनय करता है। इसी प्रयोजन से मैंने इस लोक में अवतार लिया है: जो धर्म की ध्वजा तो उठाते हैं पर धर्म का आचरण नहीं करते, वे खुले पापियों से भी बढ़कर पापी हैं और मेरे द्वारा वध्य हैं।’

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।

वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥

etad-artho hi loke 'sminn avatāro mayā kṛtaḥ vadhyā me dharma-dhvajinas te hi pātakino 'dhikāḥ

अर्थ: इसी उद्देश्य से इस संसार में मेरा अवतरण हुआ है: धर्म का झूठा दिखावा करने वाले सबसे बड़े पातकी हैं, और वे मेरे हाथों मारे जाने योग्य हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 27)

कुश का तृण

तीर्थयात्रा पर होने के कारण वे दुष्टों के वध से भी विरत थे, फिर भी इतना कहकर प्रभु ने अपने हाथ के कुश-तृण की नोक से सूत का स्पर्श किया — और रोमहर्षण वहीं प्राण त्याग गए। जो होनहार था, उसे कोई टाल नहीं सकता था।

एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि ।

भावित्वात् तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥ २८ ॥

etāvad uktvā bhagavān nivṛtto 'sad-vadhāḍ api bhāvitvāt taṁ kuśāgreṇa kara-sthenāhanat prabhuh

अर्थ: इतना कहकर सर्वसमर्थ भगवान् ने, यद्यपि वे असाधुओं के वध से भी निवृत्त थे, भवितव्यता के कारण उसे हाथ में स्थित कुश के अग्रभाग से मार डाला। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 28)

ऋषियों की प्रार्थना और प्रभु का वचन

सब ऋषि 'हाय! हाय!' कह उठे और खिन्न मन से संकर्षण देव से बोले: 'प्रभो, आपने अधर्म किया है। हे यदुनन्दन, इन्हें ब्रह्मासन हमने दिया था, और उसके साथ इस सत्र के चलने तक दीर्घ आयु और अक्लान्त देह भी। अनजाने ही आपसे ब्रह्मवध के समान कर्म हो गया। आप योगेश्वर हैं, वेद भी आपको नहीं बाँधते; फिर भी आप संसार को पावन करने उतरे हैं। यदि आप, जिन्हें कोई प्रेरित नहीं करता, स्वेच्छा से इस पाप का विहित प्रायश्चित्त करें, तो समस्त लोक के सामने एक आदर्श स्थापित होगा।'

प्रभु ने उत्तर दिया: 'लोक पर अनुग्रह की कामना से मैं इस वध का प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा; प्रायश्चित्त का जो श्रेष्ठ विधान हो, वह मेरे लिए बताइए। और इनके लिए आपने जो चाहा था — दीर्घ आयु, बल और पूर्ण इन्द्रिय-सामर्थ्य — वह मुझे कहिए, मैं योगमाया से उसे सिद्ध कर दूँगा।'

ऋषियों ने कहा: 'हे राम, ऐसा उपाय कीजिए जिससे आपके अस्त्र का बल और आपका पराक्रम सत्य रहे, इनकी मृत्यु भी सत्य रहे, और इन्हें दिया हमारा आशीर्वाद भी पूरा हो।'

प्रभु ने कहा: 'वेद का उपदेश है कि अपना ही आत्मा पुत्र रूप में जन्म लेता है। अतः इनका पुत्र दीर्घ आयु, सशक्त इन्द्रियों और बल से युक्त होकर आपको पुराण सुनाएगा।'

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।

तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥

ātmā vai putra utpanna iti vedānuśāsanam tasmād asya bhaved vaktā āyur-indriya-sattva-vān

अर्थ: वेदों का अनुशासन यही है कि आत्मा ही पुत्र होकर उत्पन्न होता है। इसलिए इसका पुत्र आयु, इन्द्रिय-शक्ति और सत्त्व से सम्पन्न होकर आपका वक्ता बने। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 36)

'हे मुनिश्रेष्ठो, और क्या चाहते हैं?' उन्होंने आगे कहा। 'कहिए, मैं करूँगा; और हे बुधजनो, यह भी विचारिए कि अनजाने में कर्म करने वाले मेरे लिए कौन-सा प्रायश्चित्त उचित है।'



शोकिकुल ऋषि बलराम से उनका और अपना वचन दोनों रखने की प्रार्थना करते हैं; प्रभु वचन देते हैं कि रोमहर्षण का पुत्र दीर्घायु और बल से युक्त होकर उन्हें पुराण सुनाएगा (श्लोक 36)।

ऋषियों ने कहा: ‘इल्वल का पुत्र बल्वल नामक एक घोर दानव है, जो हर अमावस्या और पूर्णिमा को यहाँ आकर हमारे सत्र को दूषित करता है, हम पर पीब, रक्त, विषा, मूत्र, मदिरा और मांस बरसाता है। हे दाशार्ह, उस पापी का वध कीजिए — यही हमारी सबसे बड़ी सेवा होगी। फिर समाहित चित्त से बारह मास भारतवर्ष की परिक्रमा करते हुए तीर्थों में स्नान कीजिए; इससे आप शुद्ध हो जाएँगे।’

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।

चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसि ॥ ४० ॥

tataś ca bhārataṁ varṣaṁ parītya su-samāhitaḥ caritvā dvādaśa-māsāṁs tīrtha-snāyī viśudhyasi

अर्थ: तत्पश्चात् सुसमाहित मन से बारह महीनों तक भारतवर्ष में घूमकर पवित्र जलों में स्नान करने से आप विशुद्ध हो जाएँगे। (स्कन्ध 10, अध्याय 78, श्लोक 40)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु कभी सचमुच पराजित नहीं होते। योगेश्वर कृष्ण का श्लोक (श्लोक 16) उनके सभी युद्धों की कुंजी है: जब वे आहत या दबे हुए दिखें, तो वह केवल पशु-दृष्टि वालों का देखना है।
2. कृष्ण पर टिकी शत्रुता भी अन्त में उन्हीं में विलीन होती है। दन्तवक्र से निकलकर प्रभु में समाने वाली ज्योति (श्लोक 10) उनकी करुणा प्रकट करती है: जिसका मन वैर में भी उन्हीं से लगा रहा, वह अन्त में उन्हीं तक पहुँचता है।
3. विनय के बिना विद्या केवल अभिनय है। रोमहर्षण सब पुराण जानते थे, फिर भी प्रभु के लिए उठे नहीं (श्लोक 23)। जो ज्ञान श्रद्धा के स्थान पर अभिमान जगाए, वह वास्तव में ग्रहण ही नहीं हुआ।

4. पाखण्डी का दण्ड खुले पापी से कठोर है। जो धर्म की ध्वजा लहराते हैं पर उसे जीते नहीं, वे बड़े पापी हैं, और बलराम उन्हीं के लिए अवतरित होते हैं (श्लोक 27)। भक्ति में सच्चाई उसके प्रदर्शन से अधिक मूल्यवान है।

5. प्रभु के कोमलतम स्पर्श से भी नियति पूर्ण होती है। एक कुश-तृण (श्लोक 28) ने भवितव्य को पूरा कर दिया; प्रभु के साधन कभी उनकी शक्ति का माप नहीं होते।

6. जो आदर्श स्थापित करते हैं, उन्हें सुधार भी स्वीकार करना चाहिए। वेदों से परे होकर भी बलराम ऋषियों का विधान स्वीकार करते हैं (श्लोक 40), ताकि संसार उनसे सीखे। धर्म में बड़प्पन सुधार को स्वीकारने की तत्परता से प्रकट होता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में दो बिल्कुल भिन्न दृश्य हैं। रणभूमि में दन्तवक्र का अभिमान मुखर है: वह प्रभु का उपहास करता है, गदा की डींग मारता है, पहला प्रहार करता है। पवित्र वन में रोमहर्षण का अभिमान मौन है: वे बस बैठे रहते हैं। फिर भी मौन अभिमान ही अधिक घातक सिद्ध होता है। योद्धा कम-से-कम जानता था कि वह किसका विरोध कर रहा है; शास्त्रों से घिरा विद्वान् भूल गया कि प्रभु सभा में पधार चुके हैं। हम भी कितनी बार अपने ज्ञान के आसन पर आराम से बैठे रहते हैं और तब नहीं उठते जब प्रभु अतिथि, बुजुर्ग या सेवा के अवसर के रूप में हमारे सामने आते हैं? बलराम का कुश-तृण एक कृपा है जो वक्ता के आसन को ईमानदार रखती है, ताकि पुराण उसी के मुख से कहे जाएँ जिसने झुकना सीखा है। और स्वयं प्रभु, जिन्हें किसी प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं, विनम्रता से ऋषियों से पूछते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए। यदि वे भी संसार के लिए झुकते हैं, तो हमारा कौन-सा आसन इतना ऊँचा है कि उसे छोड़ा न जा सके?

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज जब भी कोई पवित्र नाम, शास्त्र, गुरु या बुजुर्ग आपके सामने आएँ, पहले आपका शरीर उत्तर दे: बैठे हों तो उठ खड़े हों, हाथ जोड़ें या सिर झुकाएँ। श्रद्धा को केवल मन की नहीं, अंगों की आदत बनाएँ, यह स्मरण करते हुए कि एक विद्वान् के न उठने से कितना कुछ खो गया। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

अठहत्तरवाँ अध्याय शिशुपाल की मृत्यु के बाद कृष्ण के विरुद्ध उठे शत्रुओं की शृंखला को समाप्त करता है और बलराम की पवित्र यात्रा का द्वार खोलता है। वह हमें एक ही उज्ज्वल बिन्दु देता है: जगत् के स्वामी, जो कभी जीते नहीं जा सकते, विद्या या बल से नहीं, अपितु अपने सामने झुकी विनम्रता से प्रसन्न होते हैं। नैमिषारण्य के कुश-तृण को याद रखते हुए, हम भी सीखें कि जब प्रभु हमारे जीवन में प्रवेश करें तो उठ खड़े हों।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 78।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-78-killing-of-dantavakra-viduratha-and-romaharshana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

